THE TIMES OF INDIA

Date:30-03-23

Neighbours, Big & Small

Bhutan to Bangladesh, New Delhi must prepare to compete with China in the development space.

TOI Editorials

In a statement bound to raise a few eyebrows in New Delhi, Bhutan's PM Lotay Tshering said that China has an equal say in resolving the Doklam dispute. This is different from Bhutan's 2019 position that the existing tri-junction point between India, China and Bhutan at Doklam should not be unilaterally disturbed. That Bhutan is signalling a more accommodating stance today is perhaps because of current geopolitical realities.

While India and China are locked in their own border disputes along the LAC, other countries in the neighbourhood fear getting caught in the tussle. So, it's not surprising they will sometimes sway between the two Asian giants. But this presents a strategic challenge for India. Given China's deeper pockets, Beijing is in a better position to use dollar diplomacy to its advantage in these countries. This is precisely what a recent report by a consortium, including the World Bank highlights. China has handed out $240 billion worth of bailout loans to 22 developing countries over two decades. Around 80% of those funds were doled out between 2016 and 2021 when Beijing's BRI projects picked up steam.

However, forcing Nepal, Bangladesh, and Sri Lanka to let go of Chinese funds will have the opposite impact and build up resentment against India. This risk is particularly real in Nepal where the 2015 blockade seriously hurt Indian interests. Meanwhile, relations with Bangladesh too could go south if the Sheikh Hasina governmentis unable to balance ties with India with Bangladesh's development imperatives. Against this backdrop, New Delhi needs to switch to a smarter approach, drop the Big Brother attitude and play up its own attractiveness by timely completion of development projects. Competing with China for the development space won't be easy. But it's necessary to sharpen our 'Neighbourhood First' policy.

THE HINDU

Date:30-03-23

Human life, above all

Opposition of doctors to the right to health comes from baseless misgivings.

Editorial

It is confounding how something that is stridently 'good' in ethical and legal terms can run into a wall of opposition built on narrow professional and commercial interests. As in the case of the Right to Health Act that was passed in Rajasthan last week, and the unprecedented kerfuffle that followed, with doctors in the State vehemently protesting what they called a 'draconian law'. The Right to Health is in sync with the constitutional guarantee of right to life, and other components of the Directive Principles. That no person seeking health care should be denied it, on the grounds of access and affordability, is an acceptable proviso. The Rajasthan Right to Health Act, 2022, addresses these key issues of access and affordability. It "seeks to provide protection and fulfilment of rights, equity in relation to health and well-being for achieving the goal of health care for all through guaranteed access to quality health care for all residents of the State, without any catastrophic out-of-pocket expenditure". The law, which also provides for a social audit and grievance redress, gives every resident of the State the right to emergency treatment without paying a single paisa to any health-care institution, and specifies that private health-care institutions would be compensated for the charges incurred for such treatment.

The doctors who came out in large numbers to protest the law on the streets of Jaipur said they were distrustful of the government's promise of recompense for expenses incurred for treating patients during an emergency. To the charge that there is no detailing of the process, health right activists have pointed out that it would be a function of the Rules, not the law itself. The protesting doctors also claimed to be apprehensive of the government's interference in their functioning once the law is enforced. Ironically, all of them believe that health care is a right of the people; only, they believe that the State would have to be the sole provider. However, this is scarcely the first such exposition of the right to health. In 1989, the Supreme Court observed that "every injured citizen brought for medical treatment should instantaneously be given medical aid to preserve life and thereafter the procedural criminal law should be allowed to operate in order to avoid negligent death". Having transformed a progressive ideal into law, Rajasthan should now strive to gain the trust of the doctors through demonstrable action. It is also incumbent upon the doctors to rise above the differences, and work with the government to save human lives.

दैनिक भास्कर

Date:30-03-23

युवाओं में खेल के प्रति रुझान कैसे पैदा होगा ?

संपादकीय

विश्व महिला बॉक्सिंग चैंपियनशिप में 22 वर्षीय नीतू घंघास ने मंगोलियाई बॉक्सर को 5-0 से हराकर चैंपियनशिप जीती। यहां तक पहुंचाने में उनके पिता ने नौकरी दांव पर लगाई, ट्रेनिंग के लिए कर्ज लिया। लेकिन नीतू के पिता को क्यों आर्थिक कष्ट झेलना पड़ा ? क्या यह स्थानीय प्रशासन, राज्य और केंद्र सरकारों का दायित्व नहीं था कि वे उसकी प्रतिभा को न केवल पहचानें, बल्कि उसे उभारें और सुनिश्चित करें कि अभिभावकों को इसके लिए अपनी जमीन-जायदाद न बेचनी पड़े। क्या ऐसी खेल नीति नहीं बनानी चाहिए कि बच्चों की कद-काठी परखी जाए। उनका रुझान देखा जाए और अभिभावकों को चिंता मुक्त करते हुए इन बच्चों को सरकारें खेल और यथेष्ट शिक्षा के लिए शुरू से ही तैयार करें। समस्या का एक और पहलू भी है। देश के बहुतेरे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी अकसर मुश्किलों में जीवन-यापन करते दिखाई देते हैं। ऐसे में कौन-से अभिभावक चाहेंगे कि उनका बच्चा खेलों की ओर रुख करे और भविष्य अनिश्चित करे। लिहाजा सरकारें यह भी सुनिश्चित करें कि ऐसे बच्चों को उनकी सफलता के स्तर के अनुरूप आजीवन भरण-पोषण की गारंटी दी जाए। डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 11- 17 साल के 74% बच्चे 30 मिनट भी रोजाना मैदान में नहीं खेलते और 16-39 साल के 59% युवा रोज तीन घंटे ऑनलाइन गेमिंग में व्यस्त रहते हैं।

Date:30-03-23

लोकतंत्र के आधारस्तम्भों पर उठ रहे हैं कई सवाल

राहुल से माफी की आड़ में संसद की कार्यवाही में व्यवधान की गलत परम्परा शुरू हो रही है

विराग गुप्ता, (लेखक और वकील)

राहुल गांधी के मामले पर तीन बातें हो रही हैं।

1. कांग्रेस का यह कहना कि अदाणी मामले में भ्रष्टाचार के आरोपों पर जांच और जवाब के बजाय राहुल की जुबान को बंद करने की कोशिश की जा रही है।

2. भाजपा का दावा कि राहुल के खिलाफ वह नहीं बल्कि अदालतें और कानून काम कर रहे हैं।

3. यह सियासी आकलन कि अगले आम चुनाव के समर को जीतने के लिए राहुल को उभारना भाजपा की व्यापक रणनीति का हिस्सा है। इन आरोप-प्रत्यारोपों से एक बात साफ है कि भारत में सभी दलों के नेताओं की राजनीति के केंद्र में आम जनता के बजाय सत्ता हासिल करना प्रमुख हो गया है। हालिया घटनाओं के बरक्स लोकतंत्र के पांच खम्भों के दायरे में कानून के शासन के यथार्थ को समझने की जरूरत है।

1. संसद : राहुल गांधी की सदस्यता तुरंत रद्द हो गई। लेकिन लक्षद्वीप के सांसद मो. फैजल के मामले में अदालत के आदेश पर दो महीनों तक अमल नहीं हुआ। संविधान के अनुच्छेद-141 के तहत सुप्रीम कोर्ट का फैसला देश की सभी अदालतों में मान्य होता है। लेकिन उन फैसलों को पूरी मान्यता देने के लिए संसद से कानून में बदलाव जरूरी है। अभी हाल ही में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार आईटी एक्ट की धारा-66-ए को हटाने के लिए संसद में बिल पेश किया गया था। तो उसी तर्ज पर सुप्रीम कोर्ट के 2013 के फैसले को लागू करने के लिए संसद से जनप्रतिनिधित्व कानून में बदलाव क्यों नहीं होना चाहिए?

2. सरकार : हिंडेनबर्ग रिपोर्ट में लगे संगीन आरोपों को जांच के बगैर खारिज नहीं किया जा सकता। तो फिर जेपीसी के गठन पर सत्ता पक्ष को ऐतराज क्यों है? संसद की कार्यवाही में विपक्ष के हंगामे और गतिरोध को अनाधिकारिक मान्यता मिल चुकी है। लेकिन राहुल से माफी की आड़ में सत्ता पक्ष द्वारा संसद की कार्यवाही में व्यवधान डालने से गलत परम्परा शुरू हो रही है। इस वजह से बगैर चर्चा के लोकसभा में 45 लाख करोड़ के बजट का पारित होना संसदीय व्यवस्था का दुर्भाग्य है।

3. विपक्ष : सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका में मांग की गई है कि विरोधी नेताओं के खिलाफ जांच एजेंसियों के दुरुपयोग को रोकने के लिए गाइडलाइंस बनें। संविधान के अनुसार पुलिस का विषय राज्य सरकारों के अधीन आता है। लेकिन विपक्षी दलों वाले राज्यों में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के अनुसार पुलिस सुधार की शुरुआत नहीं हो रही है। मध्यप्रदेश और गुजरात में भाजपा की राज्य सरकारों ने बीबीसी की डॉक्यूमेंट्री वाले मामले में विधानसभा में असंवैधानिक तरीके से प्रस्ताव पारित किए। उसी तर्ज पर दिल्ली में आम आदमी पार्टी के मुख्यमंत्री केजरीवाल ने अदाणी मामले पर विधानसभा में लम्बी चर्चा कर डाली, जो कि संविधान सम्मत नहीं है।

4. न्यायपालिका : अदाणी मामले पर भी सुप्रीम कोर्ट द्वारा गठित जांच कमेटी के औचित्य पर सवाल उठ रहे हैं। गुजरात हाईकोर्ट से स्टे हटने के बाद भाजपा विधायक के मुकदमे पर सीजेएम अदालत ने आनन-फानन में राहुल को अधिकतम सजा सुना दी। सूरत की अदालत की कुशलता और तेजी को सभी अदालतें अपना लें तो मुकदमों के बढ़ते बोझ के कैंसर से पूरे देश को मुक्ति मिल सकती है। राजनीतिक मामलों से जुड़े कई फैसलों की टाइमिंग और टोन से न्यायपालिका की साख को बड़ा खतरा हो रहा है।

5. मीडिया : बेमौसम बारिश और ओलों से ग्रामीण अर्थव्यवस्था और किसानों की कमर टूटने की खबरों पर अंग्रेजी अखबारों में सन्नाटा है। पाकिस्तान से जुड़े पंजाब में आतंकवाद की नई फसल को बोकर राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए बड़ा संकट खड़ा करने वाले अमृतपाल के गायब होने पर मीडिया में गहन जांच रिपोर्ट नहीं आईं। उसके बजाय टीवी चैनलों में सारस कथा और माफिया अतीक पर चर्चा चलती रही। यह मीडिया में बढ़ रही गिरावट को दर्शा रहा है।

कानून का शासन भी एक पक्ष : आपातकाल के अनुभवों से सबक लेते हुए जिसकी लाठी उसकी भैंस के प्रचलन को जड़ से खत्म करने की जरूरत है। लेकिन महाराष्ट्र मामले से साफ है कि स्पीकर, राज्यपाल और चुनाव आयोग जैसे संस्थान

संविधान के बजाय सरकार की मंशा से संचालित हो सकते हैं। राज्य और केंद्र की सरकारें संवैधानिक संस्थाओं को मजबूत करते हुए कानून का शासन लागू करें तो ही वंचित वर्ग को सही अर्थों में सामाजिक-आर्थिक न्याय का वाजिब हक मिल सकेगा।

दैनिक जागरण

Date:30-03-23

नगर निकायों की नाकामी

संपादकीय

इस पर आश्चर्य नहीं कि नगर निकाय शहरों के ढांचे में सुधार करने में असफल सिद्ध हो रहे हैं। उनकी यह असफलता इसलिए चिंताजनक है कि जैसे-जैसे शहरी आबादी की बेहतर जीवनशैली को लेकर उम्मीदें बढ़ रही हैं वैसे-वैसे नगर निकाय उन्हें पूरा करने में नाकाम हो रहे हैं। इसके चलते शहरी जीवन अनेक समस्याओं से घिरता चला जा रहा है। शहरों में बेहतर जीवन स्तर की जो कल्पनाएं की जाती हैं वे पूरी नहीं हो रही हैं। हमारे शहर विस्तार तो ले रहे हैं, लेकिन उनमें सुविधाओं का स्तर सिमट रहा है। शहरी ढांचे में सुधार करने और आवश्यक मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने की बातें तो बहुत होती हैं, लेकिन उनके अनुरूप काम नहीं हो रहा है। चूंकि शहरी ढांचे को सुधारने की गति धीमी है और शहरों में आबादी तेजी से बढ़ती चली जा रही है इसलिए शहरी जीवन और अधिक कष्टकारी होता जा रहा है। हमारे शहर केवल अव्यवस्थित विकास, गंदगी और ट्रैफिक जाम आदि से ही नहीं जूझ रहे हैं, बल्कि वे प्रदूषण से भी ग्रस्त हैं। जब भी विश्व के प्रदूषित शहरों की गणना होती है तो उनमें भारत के शहर प्रमुखता से नजर आते हैं। हमारे नीति-नियंता अनियोजित विकास से होने वाली समस्याओं की गंभीरता को समझने के लिए तैयार नहीं। यह स्थिति तब है जब वे दुनिया के दूसरे शहरों से शहरी ढांचे को सुधारने की सीख भी लेते रहते हैं। शहरों की दुर्दशा का कारण केवल अनियोजित विकास ही नहीं है। इसके साथ-साथ दूरदर्शी और टिकाऊ योजनाओं का अभाव भी है। शहरी ढांचे को सुदृढ़ करने के मामले में ऐसी योजनाएं मुश्किल से ही बनती हैं जो अगले पचास-सौ वर्षों को ध्यान में रखकर बनाई जाती हों। यही कारण है कि नई सड़कें और फ्लाईओवर कुछ ही वर्षों में अपर्याप्त सिद्ध होने लगते हैं।

हमारे शहरों की समस्याएं इसलिए भी नहीं दूर हो पा रही हैं, क्योंकि ऐसे नगर-नियोजकों का अभाव है जो शहरी ढांचे को सुदृढ़ करने के विशेषज्ञ हों। देश के छोटे-बड़े शहरों की एक बड़ी समस्या उनकी देखरेख करने वाले नगर निकायों की

शिथिलता है। वे अकुशलता, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार के साथ-साथ सस्ती राजनीति का अड्डा बन गए हैं। यह जो आशा की जा रही थी कि नगर निकायों के निर्वाचित प्रतिनिधियों से लैस हो जाने से उनकी कार्यप्रणाली सुधर जाएगी वह पूरी नहीं हो सकी है। उचित यह होगा कि इस संदर्भ में हमारे नीति-नियंता गंभीरता से विचार करें कि कमी कहां है। शहरों के आधारभूत ढांचे को सुदृढ़ करने के लिए जितने धन की आवश्यकता होती है उतना नगर निकाय कठिनाई से ही जुटा पाते हैं। ऐसे नगर निकायों की गिनती करना कठिन है जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हों। स्थिति यह है कि कई नगर निकाय तो अपने कर्मचारियों को वेतन देने लायक संसाधन भी नहीं जुटा पाते। समय आ गया है कि इन सब कारणों पर नए सिरे से नीर-क्षीर ढंग से विचार किया जाए।

जनसत्ता

Date:30-03-23

नफरत की सियासत

संपादकीय

राजनेताओं के नफरती और भड़काऊ भाषणों को लेकर सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार फिर कड़ी टिप्पणी की है। एक मामले पर दो दिनों तक चली सुनवाई में अदालत ने केंद्र सरकार से पूछा कि ऐसे नफरती भाषणों के खिलाफ अब तक क्या कार्रवाई हुई है। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय पहले भी अलग-अलग मामलों की सुनवाई करते हुए राजनेताओं और धार्मिक संगठनों से जुड़े लोगों को सार्वजनिक मंचों से बोलते वक्त संयम बरतने की नसीहत दे चुका है, मगर इस प्रवृत्ति में कोई सुधार नजर नहीं आता। स्वाभाविक ही ताजा मामले में उसने इस पर तल्ख टिप्पणी की। दो न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि जब तक राजनीति में धर्म का समावेश होता रहेगा, ऐसे नफरती भाषणों पर अंकुश लगाना संभव नहीं होगा। भारत के लोग दूसरे समुदायों के लोगों का अपमान न करने का संकल्प क्यों नहीं लेते। अदालत ने जवाहरलाल नेहरू और अटल बिहारी वाजपेयी का उल्लेख करते हुए कहा कि उनके भाषणों को लोग दूर-दूर से सुनने आते थे। वैसी नजीर अब कोई नेता क्यों पेश नहीं करना चाहता। अदालत ने इस बात पर भी आपत्ति जताई कि लोग समुदाय विशेष को लेकर ही नफरती भाषणों के खिलाफ चुनिंदा तरीके से मुकदमे क्यों दर्ज कराते हैं। उनमें सभी समुदायों और पंथों के खिलाफ दिए गए नफरती भाषणों पर सख्ती क्यों नहीं दिखाई जाती।

सर्वोच्च न्यायालय लंबे समय से ऐसे भाषणों, बयानों और तकरीरों के खिलाफ सख्त रहा है। करीब दो महीना पहले में आयोजित सकल हिंदू समाज की रैली को लेकर निर्देश दिया था कि राज्य सरकार सुनिश्चित करे कि वहां कोई नफरती भाषण न होने पाए। उस रैली की वीडियो रिकार्डिंग का भी आदेश दिया था। जब जगह-जगह धर्म संसद करके समुदाय विशेष के खिलाफ नफरती और भड़काऊ भाषण दिए गए थे, तब भी अदालत ने सरकार को सख्त लहजे में इस पर काबू पाने को कहा था। मगर राजनीतिक दलों के प्रवक्ताओं और नेताओं को शायद ऐसे अदालती आदेशों-निर्देशों की कोई परवाह नहीं है। खुद सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात का उल्लेख किया है कि टीवी चैनलों पर आए दिन राजनीतिक दलों के प्रवक्ता सांप्रदायिक सौहार्द बिगाड़ने वाले वक्तव्य देते रहते हैं। राजनेताओं से किसी भी ऐसे आचरण की अपेक्षा नहीं की जाती, जिससे सामाजिक ताने-बाने पर बुरा प्रभाव पड़ता हो। मगर इस दौर की राजनीति का स्वरूप कुछ ऐसा बनता

गया है कि दूसरे धर्मों, संप्रदायों, समुदायों के खिलाफ नफरती भाषण देकर अपना जनाधार बढ़ाने का प्रयास किया जाने लगा है। जाहिर है, उसमें भाषा की मर्यादा का भी ध्यान नहीं रखा जाता।

सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी से स्पष्ट है कि इस प्रवृत्ति पर रोक लगाने के लिए सरकारों को संजीदगी दिखाने की जरूरत है। नफरती भाषणों के खिलाफ सख्त कानून हैं, मगर चिंता की बात है कि पुलिस और प्रशासन ऐसे मामलों पर चुनिंदा ढंग से कार्रवाई करते देखे जाते हैं। इसे लेकर सर्वोच्च न्यायालय ने पूछा तो केंद्र सरकार की तरफ से पेश हुए वकील ने कहा कि ऐसे अठारह मामलों में प्राथमिकी दर्ज कराई जा चुकी है। मगर उन पर कार्रवाई क्या हुई, इसका जवाब उनके पास नहीं था। छिपी बात नहीं है कि किस-किस राजनीतिक दल के कौन-कौन से नेता और प्रवक्ता किन-किन मौकों पर क्या-क्या नफरती बोल बोल चुके हैं। मगर विडंबना है कि उन्हें रोकने की जरूरत नहीं समझी गई और वे ऐसे विद्वेष भरे भाषण देते रहते हैं। सर्वोच्च न्यायालय की ताजा टिप्पणी को राजनीतिक दल कितनी गंभीरता से लेंगे, कहना मुश्किल है।